IJNRD.ORG ISSN : 2456-4184
INTERNATIONAL JOURNAL OF NOVEL RESEARCH AND DEVELOPMENT (IJNRD) | IJNRD.ORG
An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

उत्तराती के व्यंग्य साहित्य में आलोच्य युगीन आर्थिक परिस्थितियाँ

डॉ0 ज्ञानेन्द्र प्रताप सिंह
असिस्टेंट प्रोफेसर
रजत पी0जी0 कॉलेज, लखनऊ

उत्तर ाती में औद्योगीकरण, परियोजनाएँ आदि का विकास हुआ। परन्तु महँगाई, बेकारी और निर्धनता भी बढ़ रही है। आजाद भारत का सुखी, सम्पन्न और संतोशमय उज्जवल भविश्य का सपना मात्र ही रह गया। इसका कारण आर्थिक विशमता ही था। आर्थिक असमानता ने प्रगतिवाद को जन्म दिया है। पूँजीपतियों, मिल–मालिकों, जमींदारों, सूदखोंरों, मुनाफाखोरों कालाबाजारियों और ऐ ोआराम पर धन को पानी की तरह बहाने वाले लोगों पर व्यंग्यकार ने अपनी लेखनी चलाई है। सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' ने 'कुकुरमुत्ता' कविता में कहते हैं– ''खून चूसा खाद का तूने, अ ाश्ट, डाल पर इतराता है, कैपिटलिस्ट''[1]

आर्थिक विशमता ने सर्वोदय, समाजवाद, गरीबी हटाओ जैसे नारे दिए हैं। आर्थिक विशमता ने रि वत, घूंस, भ्रश्टाचार को बढ़ावा दिया है। आर्थिक विशमता के कारण ही बेरोजगारी बढ़ी है। वोटों को खरीदने की नीति राजकीय नेताओं ने अपनायी है। आर्थिक विशमता के कारण ही नक्सलवादी, झारखण्ड, बोडो जैसे आन्दोलन ि ावसेना, लक्ष्मीसेना जैसी साम्प्रदायिक पार्टियों का जन्म हुआ। छात्रों में अनु ाासन का अभाव और मूल्यों का ह्रास पैदा हुआ।

सर्वोदय का अर्थ है सबका हित और कल्याण। आचार्य विनोबा भावे ने महात्मा गाँधी से प्रेरणा लेकर इस आन्दोलन की भ्रारूआत की। जयप्रका ा नारायण भी इस आन्दोलन के साथ थे पर आगे वे इससे अलग हो गए। सर्वोदय ने 'भू–दान अभियान' द्वारा अतिरिक्त जमीन दान में लेकर भूमिहीन को बाँटने का कार्य हाथ में लिया। पर आद ा यथार्थ नहीं बन सका। इस तथ्य को कथ्य बनाकर हरि ांकर परसाई ने ''सर्वोदय–द ान''[2] और रवीन्द्रनाथ त्यागी ने 'सहयात्री' में सर्वोदय की खिल्ली उड़ाई है।

रवीन्द्रनाथ त्यागी लिखते हैं– ''गाँव का मुख्या उन्हें (विनोबा को) सबसे मोटी बकरी का दूध पिलाता था और बाद में सबसे निकृश्ट भूमि भूदान में दी जाती थी। कहीं–कहीं ऐसी–ऐसी भूमि दी गई जिस पर वर्शों से मुकदमेंबाजी होती चली आ रही थी।''[3]

समाजवाद

उत्तर ाती के साथ ही समाजवाद का आगमन भारत में हुआ। संविधान में समाजवाद को स्थान दिया गया है। समाजवाद का अर्थ है– सबको समान अवसर, अपनी उन्नति, प्रगति का। नेहरूजी ने समाजवाद का समर्थन तो किया पर उन्होंने अर्थ व्यवस्था मिश्रित अर्थात् समाजवादी और पूंजीवादी रखी। सभी पार्टियों ने यहाँ तक कि जनसंघ अब भारतीय जनता पार्टी तक ने समाजवाद को अपना लक्ष्य माना है परन्तु वास्तव में समाजवाद मात्र नारा रह गया है। गरीब की आर्थिक हालत बद से बदतर हो गई है। अतः समाजवाद मखौल का विशय बना।[4]

सुद ान मजीठिया कहते हैं ''दे ा के सारे हाथी–घोड़े मरवा देने चाहिए क्योंकि ये सामंतवादी मध्ययुगीन संस्कृति के प्रतीक है। समाजवाद का प्रतीक गधे को बना देना चाहिए क्योंकि सभी दि ाओं में गधे काफी तेजी से आगे बढ़ रहे समाजवाद के एकदम अनुकूल है।''[5] इतने बड़े बवाल में हरि ांकर परसाई ने ऐलान कर दिया कि समाजवाद के सुरक्षा का उचित प्रबन्ध न हो सका, अतः फिलहाल उसका आना मुल्तवी कर दिया है।''[6]

भारद जो ाी ने देखा कि समाजवाद के ऐलान से अत्यधिक उथल–पुथल मच गई है तो लोगों को समझाते हुए कहा, ''समाजवाद महँगाई में खो गया है। वह तो महँगाई के रूप में आ गया है देखिये तो चाय में भाक्कर कम हो रही है, दाल में नमक कम हो रहा है, किंचन से वनस्पति गायब है, बाथरूम से साबुन गायब है।''[7] अब समाजवाद आ ही जाएगा। समाजवाद को लाने के लिए सरकार टैक्स लगाती है। टैक्स मामूली आदमी पर नहीं लगता बड़े आदमी पर लगता है। खर्च बढ़ता देख वह बड़ा आदमी अपने उत्पादन का भाव बढ़ा देता है, जिसे मामूली आदमी चुकाता है। इस तरह मामूली आदमी और भी मामूली हो जाता है।

अंत में मैं रवीन्द्रनाथ त्यागी द्वारा भी परिभाशा को उद्धृत करना चाहूँगा– ''जो खाओ वह बाँट कर खाओ, चाहे वह रोटी हो या रि वत।''[8] इस तरह व्यंग्यकारों ने अपने व्यंग्य द्वारा भारत के अनोखे समाजवाद का चित्र हमारे सामने रखा है।

1971 के मध्यावधि चुनाव में इंदिरा गाँधी ने गरीबी हटाओ' का नारा बुलन्द किया। आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए कई विधेयक पास किये गये। चौदह बैंकों का राश्ट्रीकरण किया, राजाओं का प्रीवी–पर्स समाप्त किया गया। राश्ट्रीयकरण के कारण बैंक गरीब, किसानों को पूरक व्यवसाय और लघुउद्योग तथा खेती में विकास के लिए आसानी से ऋण देने लगे परन्तु 'गरीबी हटाओ' की घोशणा मध्यावधि चुनाव जीतने का नारा मात्र रहा। गरीबी तो हटी नहीं, हाँ, गरीब कुछ मात्रा में हट गये। भारद जो ी ने तथा सुद ान मजीठिया ने इस पर व्यंग्य किया है।[9]

भारद जो ी लिखते हैं, ''गरीबी हटाने के लिए सरकार कमर कसे है– लगता है हमें कुर्बानी करनी होगी– जो जहाँ है और जिसकी जो गरीबी है, हटा ले। जैसे किसी व्यक्ति की गरीबी उसकी साइकिल में है तो वह उसे फेंक दें और स्कूटर मोल ले। (गरीबी उस भैंस की तरह हटा दी जायेगी जो बंगले का घास चरने घुस आती है।''[10]

आर्थिक विपन्नता के परिणामस्वरूप छात्र आन्दोलन होते हैं। इन आन्दोलनों पर रवीन्द्रनाथ त्यागी व्यंग्य करते हुए लिखते हैं– ''विद्यार्थियों के लिए निर्माणात्मक एवं रचनात्मक कार्य करने के लिए विस्तृत क्षेत्र है। रेल की पटरियाँ उखाड़ना, सरकारी बसें जलाना, डाकखाने लूटना, पुलिस के साथ हाथा–पाई करना। इन क्षेत्रों में इतना अधिक कार्य करने को पड़ा है कि विद्यार्थियों के बेकार रहने का प्र न ही नहीं उठता। खाली बैठने से ऐसे कार्य करना कहीं बेहतर है।''[11]

आज दे ा की सबसे जटिल समस्याओं में से एक समस्या है बेरोजगारी या बेकारी की। फिर नौकरी पाने में भ्रश्टाचार आ गया है। आज का नवयुवक ॲप्लीके ान पर ॲप्लीके ान करता है पर रिप्लाय नहीं मिलता। इस तथ्य को भारद जो ी ने 'सरकार का जादू' में उभारा है। पहले तो प्रार्थी को कोई जवाब नहीं मिलता। दूसरी बार लिखने पर 'रिजेक्ट' हो जाते हैं। पर जब आवेदन पत्रों के साथ नोट नत्थी किये जाते हैं। तब नोट रख लिये जाते हैं और सारे आवेदन सैक ान हो जाते हैं।''[12]

नरेन्द्र कोहली कहते हैं (जब) इस दे ा में नौकरी न पा सकने वाले (डॉ0 खुराना) को नोवेल प्राइज मिला तो मुझे, जिसे रेल का फाटक खोलने और बन्द करने की नौकरी मिल गई थी। नोबेल प्राइज लेने से कौन माई का लाल रोक सकता है।''[13]

आज बेरोजगारी की समस्या इतनी विकट हो गई है कि छोटी से छोटी नौकरी प्राप्त कर लेना बड़े–बड़े योग्यों को भी मु कल है। व्यंग्यकारों ने इन विसंगति पर खूब व्यंग्य किया है। मुनाफाखोरी : कालाबाजारी–भ्रश्टाचार रूपी दानव के कालाबाजारी और कालाधन महत्वपूर्ण अंग है। आव यक वस्तुओं का अभाव, दिन–प्रति–दिन बढ़ती महंगाई ने कालाबाजारी और काले धन को जन्म दिया है।

डॉ0 श्रवण कुमार गोस्वामी के उपन्यास 'दर्पण झूठ ना बोले' में ''जनता सेठ की दुकान पर भाक्कर लेने आती है। बीस का नोट देने पर वापस आठ रुपये मिलते हैं। बिल की मांग करने पर पहले तो 'नां कर देता है पर बाद में दुकानदार अंग्रेजी में एक किलो का दाम चार रुपये लगाकर दे देता है।''[14] नरेन्द्र कोहली व्यापारियों की ब्लैक मनी पर चोट करते हुए लिखते हैं– ''जब वर देने वाले देवता प्रकट होकर कहते हैं कि उनका वरदान का कोटा सीमित है, तो मैं बोल पड़ा–'' देखो, देवता अपने कोटे की बात कर तुम मुझे टाल नहीं सकते। मैं जानता हूँ, तुम यहाँ से वरदान बचाकर ले जाओगे और फिर उन बचे वरदानों को ब्लैक में बेचोगे।''[15]

फणी वरनाथ रेणु ने 'उत्तर नेहरू चरितम्' में अखिल भारतीय ब्लैक मार्केटियर्स सम्मेलन का प्रथम अधिवे ान' में कालाबाजारियों पर करारा प्रहार किया है। यह अधिवे ान श्री रामबहादुर चुहाडनंद चोरबाजारिया के सभापतित्व में हुआ। सभापति का जुलूस आधीरात के सन्नाटे में चोरी से पाकिस्तान जाने वाले चीनी के बोरों से लदी गाड़ियों पर निकला। इसमें 420 प्रतिनिधि भागिल हुए थे। सम्मेलन का गीत था–

जण जन गण जीवन ना ाक जय हे
चोर बाजार विधाता। जय हे
हे अकाल अधिनायक
गायक मृत्युगीत प्रलयंकर।

माखन चोर कृश्ण की जय' का नारा लगाकर सभापति ने भाशण प्रारम्भ किया और कहा– हम तो कृश्ण से एक कदम आगे है, उन्होंने सिर्फ माखन और चीर हरण किया। हमने तो अनाज से लेकर मिट्टी तक का हरण किया है। हमारी कृपा से न जीवितों को अन्न मिला न मुर्दो को कफन। इस पर नारा गूंजा–ब्लैक मार्केटियर राज्य कायम हो।''[16]

भाई–भतीजावाद

आज किसी भी पद के लिए योग्यता, प्रतिभा को नहीं देखा जाता, रि तेदारी और जाति ही आज योग्यता बन गई है। इसी कारण भाई–भतीजावाद पनपा है। चुनाव में टिकट, दफ्तरों में नौकरी, स्कूलों में प्रवे ा, कोटा–परमिट, लाइसेंस रि तेदारों को ही दिया जाता है। इससे जो योग्य है वे आगे नहीं आ पाते। 'हम बिहार से चुनाव लड़ रहे हैं' में नेता चुनाव के समय आव वासन देता है– ''हमारे भाई–भतीजे, मामा, मौसा, फूफा, साले, बहनोई, जो जहाँ भी हों बिहार में आकर बस जाये और रि तेदारी के सबूत समेत जीवन सुधारने की दरखास्त अभी से दे दें।''[17]

सुद ान मजीठिया ने 'त्रिमूर्ती' रचना में गधे, बैल और कुत्ते के वार्तालाप से जाति–व्यवस्था पर व्यंग्य किया है। ''हम तीनों (गधा, बैल और कुत्ता) परस्पर एक दूसरे की जाति में नहीं पैदा हो सकते इसलिए हमारी तो जाति अलग–अलग है, किन्तु आदमी

की जाति में आदमी तो पैदा हो सकता है, फिर इनमें क्यों जातियाँ होती हैं ? योगीराज गर्दभ ने धीरे–से गर्दन हिलाकर कहा– क्योंकि आदमी में अक्ल है।''[18]

भाई–भतीजावाद और जातिवाद की भाँति आज 'सोर्स' भी उतना ही जरूरी है। बिना 'सोर्स' के छोटा से छोटा काम नहीं हो सकता। तबादला कराना हो, नौकरी पाना हो, दाखिला कराना हो, वजीफा प्राप्त करना हो, ये सब बिना 'सोर्स' के असंभव है। इस बात को लक्ष्य कर हरि ंकर परसाई ने लिखा है– ''जायज काम कराने जाओ तो भी लगता है नाजायज काम है जो 'सोर्स' के बिना नहीं होगा।''[19] सरकारी अस्पताल भी इससे अछूते नहीं है। ''बीमार बच्चों का बाप अपने बच्चों को बिना 'एप्रोच' के देखने नहीं जा सकता और वह 'एप्रोज' भिड़ाने लगता है।''[20] एक फर्स्ट क्लास एम0 एस–सी0 प्राध्यापक को कालेज से तीन वर्श के बाद इसलिए निकाल दिया जाता है कि उसका कोई 'सोर्स' नहीं है और रिक्त स्थान पर थर्ड क्लास व्यक्ति को ले लिया जाता है।''[21]

भ्रश्टाचार का एक और अंग हमें देखने को मिलता है, वह है– 'चमचावाद' इसमें आदमी अपने मालिक की चापलूसी पर चापलूसी करता रहता है। चमचावाद पर रवीन्द्रनाथ त्यागी लिखते हैं– ''स्वाधीनता के बाद चमचावाद को जो गौरव और लोकप्रियता प्राप्त हुई है। वह अपने जमाने में छायावाद को भी नहीं प्राप्त हुई थी। छायावाद की बड़ी सीमाएं थीं। वह मात्र हिन्दी भाशी क्षेत्र की कविता तक सीमित था जबकि– चमचावाद सारे दे ा में हुकूमत करता है और कविता के बाहर भी उसकी गति उतनी ही अनंत है जितनी काव्य के क्षेत्र में।''[22]

ि ाक्षा– 14 वर्श तक के बच्चे को निः ुल्क अनिवार्य ि ाक्षा का कानून बना है। ि ाक्षा पर हजारों रुपये खर्च हो रहे हैं पर बच्चे अि ाक्षित के अि ाक्षित ही रह जाते हैं और आगे प्रौढ़ ि ाक्षा का कार्यक्रम भी सरकार चलाती है। एक मंत्री से पूछा गया कि बच्चों की ि ाक्षा के प्रति सरकार लापरवाह क्यों है ? इस पर उन्होंने कहा– ''हमारी नीति में एक छुपा हुआ तत्त्व है। आप सभी जानते हैं कि दे ा में प्रौढ़ ि ाक्षा का भी अपना एक महत्व है। इसलिए ये हमारी लापरवाही नहीं मजबूरी है, क्योंकि भविश्य में प्रौढ़ ि ाक्षा का कार्यक्रम सफलता, पूर्वक चलाने के लिए कुछ बच्चों का अि ाक्षित रह जाना बहुत जरूरी है।''[23]

छात्र– ि ाक्षा प्रणाली में छात्र का स्थान महत्वपूर्ण है। अध्ययन छात्र करता है। अच्छे नागरिक का निर्माण ि ाक्षा के द्वारा ही होता है। आज की ि ाक्षा प्रणाली छात्र केन्द्रित ि ाक्षा प्रणाली न होकर परीक्षा केन्द्रित है। वह छात्र और गुरु के श्रद्धापूर्व सम्बन्धों पर निर्भर नहीं है।

''उचित ि ाक्षा प्रणाली के अभाव में जहाँ वह ि ाक्षित बेरोजगारी का कारखाना बनती है वहाँ छात्रों को अच्छे संस्कार भी नहीं दे पाती। छोटे–बड़े का भेद ि ाक्षा संस्थाओं में भी है।''[24] छात्रों में अनु ाासनहीनता इतनी कि परीक्षा में नकल करना, प्र नपत्र बदलाने के लिए पत्थर–बाजी करना, बसों – रेल में यात्रियों को परे ाान करना, बे–टिकट सफर करना, कंडक्टर से झगड़ा करना आदि आज छात्रों की पहचान बन गई है।

लक्ष्मीकांत वैश्णव ने इसी स्थिति को अपनी रचना ''अ वमेघ''[25] में दिखाया हैं अपनी अन्य रचना 'तीन अदद मास्टर : तीन अदद झलकियाँ' में छात्र परीक्षक से मार्क बढ़ाने के मामले को लेकर किस तरह पे ा आते हैं देखिए–

''बढ़ा भी दीजिए। क्या जाता है ! (साम नीति)
–यह अनैतिक कार्य है।
आपको एक कापी जाँचने का कितना मिलता है ?
–जी सवा रुपया।
हमसे सौ रुपये लो। मगर नम्बर बढ़ाओ। (दाम नीति)
–नहीं यह कार्य अनैतिक है।

तुम्हें मालूम है कि यदि यह न हुआ तो बीच चौराहे पर तुम्हारी चमड़ी उधड़ सकती है। कालेज का चेयरमैन मेरा मामा है, तुम्हारी नौकरी जा सकती है। तुम दाने–दाने को मोहताज हो सकते हो– (दण्ड नीति)।
जान चली जाये लेकिन अनैतिक काम नहीं करूँगा।
अब वह भेद नीति पर आ गया।
.....तुमने छगन के नम्बर बढ़ाये थे। छात्रा कृश्णाबाई को परीक्षा हाल में चिट सप्लाई करते थे। रामकलीबाई और लक्ष्मीबाई से इ क था और रामकलीबाई के गालों को सहलाकर बालों में फूल खोंसते समय छात्र चंगीलाल और मांगीलाल ने तुम्हें रंगे हाथों पकड़ा था।''[26]

छात्रों को पता है, अपने गुरु लंपट हैं तो वे कपटी हो गए हैं। सब अपने अपने स्वार्थों की पूर्ति में लगे हैं। कालेज तो आजकल ि ाक्षा का केन्द्र न रहकर फै ान–परेड का स्थान हो गया है। इसे देखकर डॉ0 प्रभाकर माचवे को वि वास अपने को ा से 'नामुमकिन' भाब्द निकाल देंगे। क्योंकि मैंन 'फै ान न करने वाली एक कालेज की लड़की देखी है।''[27] इस तरह मति वैदग्ध्य के द्वारा व्यंग्य किया गया है।

आज विद्यार्थी की परिभाशा हो गई है– ''विद्यार्थी भाब्द का अर्थ धीरे–धीरे यह होता जा रहा है कि जो विद्या की अर्थी निकाले वह विद्यार्थी।''[28]

आज का विद्यार्थी एकलव्य जैसा भोलाभाला नहीं वह धूर्त हो गया है– ''उस एकलव्य ने बिना तर्क गुरु को अँगूठा काटकर दे दिया, इस एकलव्य ने गुरु को अंगूठा दिखया है।''[29]

पाठ्यक्रम– पाठ्यक्रम का अर्थ है ि ाक्षा का कथ्य। पर इस ओर ध्यान कम गया है। पाठ्यक्रम का अनाव यक विस्तार ि ाक्षा–प्रणाली में सं ोधन के नाम पर हुआ है। पाठ्यक्रम में सुधार महज खानापूर्ति मात्र रह गया है। भारद जो ी ने इस कथ्य को अपनी रचना 'घास छीलने का पाठ्यक्रम' में इस ढंग से रखा है– ''मैं जरा स्वभाव से पाठ्यक्रमवादी हूँ और मानता हूँ कि दुनिया की सारी जरूरी बातें छात्रों के पाठ्यक्रम में ठूंस दी जानी चाहिए।'' आगे वे कहते हैं, ''घास छीलने की कला में निपुण होकर विद्यार्थी स्वयं का और दे ा का भविश्य बहुत उज्ज्वल रहेगा।''[30]

यज्ञ भार्मा ने 'इक्कीसवीं सदी की बालभारती' में इक्कीसवीं सदी के भारत की झलक पे ा की है।

पहले पाठ का भीर्शक है– 'राम घर चल।'
अब पाठ देखिए– राम घर चल। राम इक्कीसवीं सदी में चल।
राम नाडा कस। फटी कमीज डाल। सूखी रोटी।
चबा और चल। राम जल्दी चल। बाप मारेगा।
बाप मारता है। हर सदी में बाप राम को मारता है।
राम घर चल। सबको इक्कीसवीं सदी में चलना है–
सरकार का आर्डर जल्दी चल।''[31]
इस तरह पाठ्यक्रम पर व्यंग्य मिलते हैं।

माध्यम – अध्ययन का माध्यम मातृभाशा होना आव यक है। भाशावार प्रान्तों की स्थापना के बाद स्पश्ट हो गया कि प्रादे िक भाशाओं का प्रयोग प्रादे िक ि ाक्षा तथा प्र ाासन में हो सकता है परन्तु उच्च–स्तरीय ि ाक्षा ज्ञान–विज्ञान और 'टेक्नॉलॉजी' का माध्यम अंग्रेजी ही रखना आव यक माना गया। साथ ही यह भी तर्क रखा गया कि अंग्रेजी में ि ाक्षा देना ही समुचित है। यदि ऐसा नहीं किया गया तो भारत पुनः अज्ञान के गर्त में चला जाएगा। फलस्वरूप उच्च ि ाक्षा का माध्यम आजाद भारत में विदे ी ही रहा है। इस पर नरेन्द्र कोहली इन भाब्दों में व्यंग्य करते हैं– ''उच्च ि ाक्षा के माध्यम से अभिप्राय है, समाज में ऊँच–नीच बनाए रखने का माध्यम। अंग्रेजी हटी तो सब लोग बराबर हो जाएंगे। अंग्रेजी ि ाक्षा का माध्यम है। इसलिए लोग अपनी पुस्तकों को लाल कपड़े में बांधकर प्रणाम करते हैं। यदि उन्हें हिन्दी ने कह दिया तो लोग पहने लगेंगे और पुस्तकों का आदर–मान कम हो जाएगा। यदि अंग्रेजी का 'लाल तिकोन' रहा तो कॉलेजों में जितनी सीटें हैं उससे कम छात्र पास होंगे।''[32]

उच्च ि ाक्षा में भोधकार्य पर लगभग सभी व्यंग्यकारों ने कलम चलाई है। बिना लगन परिश्रम के पी–एच0डी0 मिलने लगी, इसका मुख्य कारण तो यह है कि महाविद्यालय, वि वविद्यालय की नौकरियों में अनुसंधान डिग्री आव यक मानी गयी। नरेन्द्र कोहली ने कहा है– ''यह मत पूछना कि पी–एच0डी0 क्या है? पी–एच0 डी0 एक डिग्री है जो नालायक लोगों के वि वविद्यालय में घुसने का चोर दरवाजा है। जिस व्यक्ति की जीवन भर किसी भी परीक्षा में प्रथम श्रेणी नहीं आई, वह पी–एच0 डी0 करके अपने आपको न केवल विद्वान कहलाने लगता है। वरन् स्वयं को विद्वान मानने भी लगता है।''[33] एक और महत्वपूर्ण कारण है 'स्टडी–लीव' का । प्रेम जनमेजय इस संदर्भ में लिखते हैं– ''पी–एच0 डी0 करने के कारण विद्यासुन्दर को तीन वर्श की स्टडी लीव' मिल जाएगी। तीन वर्श बिना विद्यालय जाए विद्यासुन्दर को पूरी आय मिलती रहेगी। उधर विद्यासुन्दर व्यापार का विकास करेगा और इधर कोई भी जरूरतमंद भोधार्थी थोड़ी–सी आर्थिक सहायता के बल पर विद्यासुन्दर के लिए भोध–ग्रन्थ लिखकर उसके ज्ञान का विकास करेगा।''[34]

डॉ0 बालेन्दु भोखर तिवारी बताते हैं डी0 लिट्0 जैसी सर्वोच्च उपाधि इससे पीछे नहीं है। एक व्यक्ति डी0 लिट्0 होना चाहता था इसलिए वह आचार्य के पास गया और अपनी व्यथा कहीं इस पर आचार्य ने कहा–''तुम रामचरितमानस को टाइप लिखाकर, अच्छी जिल्द चढ़ाकर वि वविद्यालय में जमा कर दो। दीक्षांत समारोह के अवसर पर आकर डी0 लिट्0 की डिग्री ले जाना।''[35]

डॉ0 नरेन्द्र कोहली ने 'त्रासदियाँ एक परीक्षक की' रचना में पी–एच0डी0 की मौखिकी परीक्षा को लेकर व्यंग्य किया है। मौखिकी पद्धति के साथ–साथ पुलिस कर्मियों के बर्ताव पर भी प्रका ा डाला गया है।''[36]

ऑनरी पी–एच0 डी0 पर भी व्यंग्यकारों ने कलम चलाई है। जिसने वास्तव में ज्ञान–विज्ञान, राजनीति, समाजसेवा, व्यापार या अन्य किसी जनकल्याणकारी सेवा में अपना जीवन समर्पित किया हो उसे 'ऑनररी–डॉक्टरेट' दी जाती है पर आजकल इसमें भी भ्रश्टाचार चल पड़ा है। एक मंत्री को 'डॉक्टर ऑफ लॉ आनरिसकोजा' की डिग्री दी गई तो उसने अपने आप से कहा– ''डॉक्टर बनने की इच्छा मेरी बचपन से ही थी। पर अक्ल ने साथ नहीं दिया। यह इच्छा आज पूरी हो रही है। मैं जानता हूँ यदि मैं मंत्री नहीं होता तो कानूनी डॉक्टर का कंपाउण्डर भी मुझे कोई नहीं बनाता।''[37]

भारद जो ी ने अपनी रचना 'प्रभु हमें डॉक्टरेट से बचा' में एक वाक्य बयान किया है। भारद जो ी और उनके मित्र दादू आठ दिन तक छुपे रहे, कारण वि वविद्यालय उन्हें मानद् डॉक्टरेट दे रहा था। वे भगवान् से प्रार्थना कर रहे थे, ''हे प्रभु, हमने पूर्व जन्म में जो भी पाप किये हों, इस जन्म में डॉक्टरेट से बचा।''[38]

अध्यापक– ि ाक्षा प्रणाली में छात्र–पाठ्यक्रम के साथ–साथ अध्यापक भी महत्वूपर्ण अंग है। अध्यापक छात्रों की मानसिकता का निर्माण करता है, रुचि जागृत करता है, जिज्ञासा उत्पन्न करता है। पर आज ि ाक्षा के इस अंग में भी विकृतियाँ आ गई है। छात्र पाठ्यक्रम और अनुसंधान के अंतर्गत परोक्ष रूप से अध्यापक की स्थितियों का भी चित्रण हो गया है। महीनों वेतन न मिलना, ऊँची रकम पर दस्तखत कर कम तनखा देना, डोने ान मांगना आदि बातें अध्यापक के संदर्भ में देखी जाती हैं। जहाँ एक ओर

अध्यापक का ऐसा दयनीय चित्र है, वहीं दूसरी ओर वह योग्यता में, ज्ञान में उथला होता है। ''आज प्राध्यापक की तस्वीर है– अपना मकान, अपनी गाड़ी और पढ़ना–लिखना बंद।''[39]

सन्दर्भ –

1 सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', कुकुरमुत्ता, पृ0 39
2 डॉ0 मनोहर देवलिया : हरि ांकर परसाई की दुनिया, पृ0 23
3 रवीन्द्रनाथ त्यागी : अतिथि कक्ष, पृ0 59
4 स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी व्यंग्य का मूल्यांकन : डॉ0 सुरे ा माहे वरी, पृ0 128–29
5 सुदर्शन मजीठिया : इंडीकेट बनाम सिंडीकेट, पृ0 84
6 हरिशंकर परसाई : ठिठुरता हुआ गणतन्त्र, पृ0 1–8
7 भारद जो ी : यथासम्भव, पृ0 398
8 रवीन्द्रनाथ त्यागी : भोक सभा, पृ0 28
9 स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी व्यंग्य का मूल्यांकन : डॉ0 सुरे ा माहे वरी, पृ0 129–30
10 भारद जो ी : रहा किनारे बैठ, पृ0 47
11 रवीन्द्रनाथ त्यागी : भोकसभा, पृ0 71
12 भारद जो ी : यथासम्भव, पृ0 35–37
13 नरेन्द्र कोहली : एक और लाल तिकोन, पृ0 47
14 श्रवणकुमार गोस्वामी : दर्पण झूठ ना बोले, पृ0 7
15 नरेन्द्र कोहली : एक और लाल तिकोन, पृ0 18
16 फणी वरनाथ रेणु : उत्तर नेहरू चरितम्, पृ0 46–50
17 हरिशंकर परसाई : ठिठुरता हुआ गणतंत्र, पृ0 38
18 सुदर्शन मजीठिया : इंडीकेट बनाम सिंडीकेट, पृ0 6
19 हरिशंकर परसाई : ि ाकायत मुझे भी है, पृ0 35
20 नरेन्द्र कोहली : पॉच एब्सर्ड उपन्यास, पृ0 22
21 सुदर्शन मजीठिया : इंडीकेट बनाम सिंडीकेट, पृ0 65–66
22 रवीन्द्रनाथ त्यागी : भोकसभा, पृ0 79
23 घन याम अग्रवाल : भविश्य नीति (कविता–पाण्डुलिपि)।
24 भांकर पुणताम्बेकर : विजिट यमराज की, पृ0 124–27
25 लक्ष्मीकांत वैश्णव : मेरी श्रेश्ठ व्यंग्य रचनाएं, पृ0 1 से 4
26 लक्ष्मीकांत वैश्णव : मेरी श्रेश्ठ व्यंग्य रचनाएं, पृ0 11–12
27 डॉ0 प्रभाकर माचवे : खरगो ा के सींग, पृ0 175
28 रवीन्द्रनाथ त्यागी : भोकसभा, पृ0 44
29 हरिशंकर परसाई : सदाचार का तावीज, पृ0 13
30 भारद जो ी : रहा किनारे बैठ, पृ0 105
31 धर्मयुग : 26 जनवरी, 1986, पृ0 30
32 नरेन्द्र कोहली : एक और लाल तिकोन, पृ0 111–114
33 नरेन्द्र कोहली : मेरी श्रेश्ठ व्यंग्य रचनाएं, पृ0 35–36
34 प्रेम जनमेजय : बे ार्ममेव जयते, पृ0 28
35 डॉ0 बालेन्दु भोखर तिवारी : मेरी प्रिय व्यंग्य रचनाएं, पृ0 39
36 नरेन्द्र कोहली : त्रासदियाँ, पृ0 105–113
37 हरिशंकर परसाई : ि ाकायत मुझे भी है, पृ0 47
38 भारद जो ी : यथासम्भव, पृ0 230–243
39 इन्द्रनाथ मदान : कुछ उथले–कुछ गहरे, पृ0 35